<u>Karmyog - Ek Parichay</u>

Course - B.A./B.Sc. Yogic Studies
Paper - 1

Lesson presented by-

Dr. Prabhakar Devraj

Co-ordinator, Yogic Studies
E-mail - drpdevraj@gmail.com

कर्मयोग - एक परिचय

योग का वह मार्ग जिसमें कर्म के द्वारा योग के लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है, उसे कर्म योग कहते हैं। कर्मयोग का लक्ष्य है कर्म बन्धन से मुक्ति । इसके पहले कि हम इस मार्ग के साधनों की चर्चा करें, कर्म का परिचय आवश्यक है। तीन शब्द हैं जो आम बोलचाल में पर्याय की तरह उपयोग किए जाते हैं - क्रिया, कर्म तथा काम । विशेष स्थितियों में ये भिन्न अर्थ रखते हैं, विशेषकर योग के संदर्भ में । 'क्रिया' का प्रयोग योग की विशेष क्रियाओं के लिए होता है । क्रियायोग योग एक अलग ही शाखा है । 'काम' शब्द का प्रयोग मनुष्य की वासनाओं, विशेषकर कामवासना को निरूपित करता है।

कर्म का अर्थ है- वह जो कुछ भी जो कोई भी जीव अपने शरीर द्वारा संपादित करता है। संसार में ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो कर्म नहीं करता। हर जीव हर क्षण कुछ न कुछ कर्म करता रहता है। कर्म के बिना जीवन सम्भव नहीं है । जीव का नैसर्गिक गुण है अपने जीवन की रक्षा करना, वृद्धि करना और प्रजनन करना। इन गुणों से संबंधित कर्म तो हर जीव करता है। मनुष्य योनि में जन्म लेने का विशेष अर्थ है। इसलिए मनुष्य के कर्म भिन्न हैं। इस पर प्राचीन काल से ही तपस्वियों तथा तत्त्वचिंतकों ने गहन शोध किए हैं। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को अपने कर्म अत्यंत विचार पूर्वक करना चाहिए ताकि उसका मानव जन्म सफल हो सके।

कर्मयोग का आधार शास्त्र श्रीमद् भगवद्गीता है। कर्मयोग के तत्त्व को समझने के लिए छात्र श्रीमद् भगवद्गीता का अध्ययन अवश्य करें।

कर्म के प्रकार

कर्म के मुख्यत: तीन प्रकार हैं:-

1. संचित कर्म
2. प्रारब्ध कर्म
3. क्रियमाण या आगामी कर्म

1. संचित कर्म- यह हमारे कर्मों का संचित भंडार है। हम अनेक जन्मों में जो कर्म करते हैं, वे जमा होते जाते हैं ।

2. प्रारब्ध कर्म- इस संचित भंडार का वह भाग है जिसका फल हमें इस जीवन में भोगना होता है। इससे बचा नहीं जा सकता, क्योंकि यह हमारे पूर्व जन्म में किए गए कार्यों का फल है।

3. क्रियमाण कर्म- ये वे कर्म हैं जो हम इस जन्म में कर रहे हैं । ये संचित कर्म के रूप में जमा होते जाते हैं, जिनका फल हम आगामी जीवन में भोगते हैं।

स्पष्ट है कि इस जीवन में हमारा नियंत्रण केवल वर्त्तमान में किए जाने वाले क्रियमाण कर्म पर है । हमें अपनी बुद्धि या विवेक द्वारा यह निश्चय करना है कि हमें किस प्रकार का काम करना है जिससे हमारे संचित कर्मों में ऐसी वृद्धि न हो कि आगे हमें दु:ख भोगना पड़े। इसका निश्चय कैसे हो ?

कर्म का स्वरूप :

जो कार्य हम इस जीवन में करते हैं , उनके विभिन्न स्वरूप हैं। मनुष्य को यह निर्णय करना होता है कि वह किस श्रेणी के कर्म को अपने जीवन का ध्येय बनाए ।

श्रीमद्भगवद्गीता की उक्ति है -

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण: ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति: ।।　　　(4/17)

अर्थात् कर्म (सकाम) का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है ।

कर्म के निम्नलिखित स्वरूप हैं :-

1. स्वाभाविक कर्म - ऐसे कर्म जो शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिए मन, इंद्रियों तथा शरीर द्वारा किए जाते हैं उन्हें स्वाभाविक कर्म करते हैं कहते हैं । भोजन, श्वसन, मल-विसर्जन, प्रजनन आदि इसी की श्रेणी में आते हैं ।

2. सकाम कर्म - जिन कार्यों को अपने दैनिक जीवन में हानि-लाभ का विचार करके तथा इंद्रियों की सुख की पूर्ति के लिए करते हैं, उन्हें सकाम कर्म कहते हैं। धन, यश, पद-प्रतिष्ठा आदि के जो भी कर्म करते हैं, वे सकाम कर्म होते हैं।
3. काम्य कर्म- जब कोई श्रेष्ठ कर्म हम किसी सांसारिक उद्देश्य की प्राप्ति अथवा लालसा के अधीन करते हैं तो उसे काम्य कर्म कहते हैं । पुत्र-प्राप्ति, व्यापार में सफलता अथवा रोगों से मुक्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ, पूजा-पाठ, दान आदि काम्य कर्म की श्रेणी में आते हैं ।
4. निष्काम कर्म - यह कर्म की श्रेष्ठ श्रेणी है । जो कर्म बिना किसी फल की आशा अथवा आसक्ति के किए जाते हैं, वे निष्काम कर्म हैं। समाजहित, देशहित अथवा मानवता की भलाई में, बिना स्वार्थ के किए जाने वाले कर्म, इस श्रेणी में आते हैं।
5. अकर्म - जो कार्य कर्त्तापन के भाव के बिना किए जाते हैं उन्हें अकर्म कहते हैं । कर्म की यह श्रेष्ठ श्रेणी है। कर्त्तापन की भावना का पूर्ण त्याग सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं है । यह किसी उच्च कोटि के कर्मयोगी द्वारा ही सम्भव होती है।

   इस प्रकृति के कर्म संचित कर्म के भंडार में नहीं जाते । ये संचित कर्मों का क्षय करते हैं, जिससे भंडार घटता जाता है। इस प्रकार ये मनुष्य को कर्मफल के चक्र से मुक्त करने वाले होते हैं।
6. विकर्म - ये वैसे असामाजिक कृत्य हैं जो दूसरों को कष्ट या क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किए जाते हैं । चोरी-डकैती, हिंसा, व्यभिचार आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार के कर्म संचित कर्मों में वृद्धि करते हैं जिससे आपके आगामी जीवन का बोझ और बड़ा हो जाता है ।

विवेकशील मनुष्य निष्काम कर्म अथवा अकर्म का रास्ता पकड़ते हैं , जिससे वे कर्म बंधन से मुक्ति पा सकें। अज्ञानी मनुष्य लोभ और वासनाओं के अधीन होकर सकाम कर्म , काम्य कर्म अथवा विकर्म में लिप्त रहते हैं ।

कर्म का सिद्धांत

जिस प्रकार हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, उसी प्रकार हर कर्म वापस लौटता है - कर्मफल के रूप में। हमारे द्वारा किए गए अच्छे या बुरे जो भी कर्म हों उन का फल हमें भोगना पड़ता है, इस जन्म में या अगले जन्म में । वर्त्तमान जीवन में जो कष्ट हम भोगते हैं वह हमारी पूर्व जन्म में किए गये गई कर्मों का फल होता है। हर विचार, हर कामना हर मानसिक या शारीरिक कर्म अपने फल लाता है। कर्म और फल का यह चक्र जन्म दर जन्म चलता रहता है। इस प्रकार मनुष्य कर्मफल के चक्र में बंधा रहता है । कर्मयोग इस चक्र से मुक्ति दिलाने का मार्ग है ।

कर्मयोग की परिभाषाएं :

(1) **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ **(2/48)**
अर्थात् कर्म करना मात्र ही तेरा अधिकार है, उसके फल की इच्छा कभी मत करो ।
कर्म के फल का हेतु मत बनो, न ही अकर्मण्यता का आश्रय लो ।।

(2) **अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य: ।**
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय: ॥ **(6/1)**
अर्थात् जो ज्ञानी व्यक्ति कर्म के फल की इच्छा किए बिना, करने योग्य कार्य, करता है वही संन्यासी और योगी है। केवल अग्नि को त्याग कर देने वाला अथवा कर्मों को त्याग कर देने वाला मनुष्य योगी या सन्यासी नहीं है।

(3) कर्मयोगी का केवल एक लक्ष्य है निस्वार्थता की उपलब्धि। जिस उद्देश्य को ज्ञानी अपने ज्ञान द्वारा तथा भक्त अपनी भक्ति द्वारा प्राप्त करता है कर्मयोगी उस लक्ष्य की प्राप्ति केवल कर्म द्वारा करता है।

-स्वामी विवेकानंद

(4)प्रतिक्षण पूर्ण सजगता से किया गया कार्य है कर्म ही कर्मयोग है।

-स्वामी निरंजनानंद

कर्मयोग के तत्व

परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर्मयोगी जो कर्म करता है उनमें कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो उसके सामान्य कर्म को कर्मयोग बना देते हैं। वे तत्व इस प्रकार हैं :-

(1)अहम् का लोप - यह अभिमान नहीं होना चाहिए कि अगर 'मैं' इस काम को नहीं करता तो यह काम नहीं होता। "मैं ही हूं जो यह काम हो गया" यह भाव अहंकार की वृद्धि करता है। इस प्रकार का भाव कर्मयोग के मार्ग की मुख्य बाधा है।

(2)कर्त्तापन के भाव का लोप - हम जो भी काम करें यह न समझें कि 'मैं' ही उसका करनेवाला हूं। वरन् यह समझें कि मैं इस कार्य का निमित्त हूं, औजार हूं । जिस प्रकार माली अपने औजार से पौधे को छाँटता है, उसी प्रकार मैं भी किसी के हाथों में औजार हूं। करने वाला ईश्वर है और मैं केवल निमित्त हूं।

(3)कर्तव्य के प्रति जागरूकता - कर्तव्य क्या है और और अकर्तव्य क्या है इसका ज्ञान होना महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में यह भी प्रश्न किया जाता है कि पुण्य क्या है और पाप क्या है। पुण्य अर्थात् कर्तव्य, पाप अर्थात् अकर्तव्य। पाप और पुण्य को अनेक प्रकार से पारिभाषित किया गया है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में - "यदि हम किसी कर्म द्वारा ईश्वर की ओर बढ़ते हैं तो वह शुभ कार्य है और वही हमारा कर्तव्य है परंतु जिस कर्म द्वारा हम नीचे गिरते हैं वह अशुभ है और वह हमारा कर्तव्य नहीं है। जो ज्ञानी है उनको कर्तव्य का ज्ञान सहज ही हो जाता है। अतः अन्य व्यक्तियों को चाहिए कि वह आदर्श और ज्ञानी पुरुषों का अनुसरण करें ।"

इसके अतिरिक्त एक लोकप्रिय सूक्ति है "परोपकार: पुण्याय, पापाय परपीड़नम्" अर्थात् परोपकार पुण्य है और दूसरों को कष्ट देना पाप है।

(4)कर्म फल से अनासक्ति - सबसे श्रेष्ठ कार्य तभी होता है जब उसके पीछे किसी प्रकार की प्राप्ति की आशा नहीं होती है। सांसारिक कर्मों को करता हुआ मनुष्य यदि अपने को फल

के लोभ से अलग रखे, तो वह उसके कलंको का भागी नहीं बनता। वह कमल पत्रवत् शुद्ध बना रहता है।

(5)अकर्मण्यता का त्याग - लालसा के अभाव में ऐसा न हो कि कर्म किया ही नहीं जाए। कर्मयोगी के लिए आवश्यक है कि वह सदैव कर्म में प्रवृत्त रहे। मानव मात्र की भलाई और परोपकार के जितने भी कार्य उससे हो सकें , उसे करने में उसको सदैव लगा रहना चाहिए। एक पल को भी आलस्य का नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त तत्वों से कर्म योगी की पहचान होती है । इन तत्वों की साधना जिस मनुष्य ने भी कर ली उसका कर्मयोग सिद्ध हो गया। वह ईश्वर को प्राप्त होता है ।

सम्भावित प्रश्न :

1. कर्मयोग क्या है ? कर्म के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करें।
2. कर्म के प्रकारों का वर्णन करते हुए कर्म के सिद्धांत की विवेचना करें ।
3. कर्मयोग के मुख्य तत्त्वों की व्याख्या करें ।

   अथवा

   कर्मयोगी की पहचान किन तत्त्वों से होती है, स्पष्ट करें।
4. कर्मयोगी की साधना अपने सभी कर्मों को अकर्म बनाने की होती है । कैसे ?

प्रस्तावित पाठ :-

1. श्रीमद् भगवद्गीता
2. कर्मयोग - -स्वामी विवेकानंद